प्रकाशक
ग्रामोदय प्रकाशन
सुभाष रोड,
अलीगढ़.

पहली बार : १९५७
मूल्य छः आना
कलाकार : रमेश चन्द्र

मुद्रक
राजहंस प्रेस
मेरठ.

भूमिका

सर्वोदय समाज रचना के लिये भूदान मूलक, ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति अनिवार्य है । ऐसे समाज के निर्माण में ग्रामोद्योगों का अपना एक विशेष महत्व है । गांव की सम्पत्ति को संवारने और सुधारने में ये बहुत बड़ा काम कर सकते हैं । इसलिये अहिंसक क्रान्ति को ग्रामोद्योग प्रधान माना गया है ।

आज लोगों में गांव के उद्योगों के प्रति एक जागरूकता तो पैदा हो गई है, पर अभी तक इन उद्योगों के तौर तरीकों, औजारों और विधियों से उसकी कोई जानकारी नहीं है । न वे यह ही जानते हैं कि इन उद्योगों का देश की अर्थ नीति पर क्या असर पड़ सकता है । यह खुशी की बात है कि श्री ओमप्रकाश ने देहात के इन उद्योगों के विषय में सीधी और सरल भाषा में पुस्तकें लिखी हैं ।

इन पुस्तकों में उद्योग विशेष के अतीत का गौरवपूर्ण इतिहास है, आजकल जो विधियां और औजार इनमें काम लाये जाते हैं उनका वर्णन है, देश विदेश में इस ओर अब तक की गई खोजों की चर्चा है, और प्रत्येक उद्योग के रोजी देने की अद्भुत ताकत और उसमें सुधार होने के बाद उसकी बढ़ती उत्पादन क्षमता का विवरण है । इन पुस्तकों में लेखक ने उद्योगों के आर्थिक महत्व पर भी प्रकाश डाला है ।

प्रत्येक ग्रामोद्योग के इन सब महत्वपूर्ण पक्षों को एक ही पुस्तक में देकर लेखक ने हिन्दी में एक बड़ी कमी को पूरा किया है।

इन पुस्तकों में मेहनत और लगन के साथ जो काम किया गया है वह ग्राम सेवकों, नवसाक्षरों और विद्यार्थियों, सभी के लिये बहुत उपयोगी हैं। उन लोगों के लिये भी इसमें काफी सामग्री मिल सकती है जो ग्रामोदय का कार्य कर रहे हैं।

धीरेन्द्र मजूमदार
प्रधान
अखिल भारत सर्व सेवा संघ

गाँव का बुनकर

हाथ करघे की कहानी

"कमीज को इस तरह मत चबाओ अशोक ? तुम को कितनी बार समझाया है और अब तो तुम बड़े भी काफी हो गये हो। पर तुम्हारी यह बच्चों वाली आदत अभी तक गयी नहीं।"

रमेश का इतना कहना था कि बारह साल के उनके लड़के अशोक ने अपने मुंह में दबा कमीज का नीचे का कोना निकाल लिया और जैसे अपनी झेंप मिटाने के लिये ही वह बोला, "इससे क्या हो जाता है पिता जी।"

रमेश झल्लाता हुआ बोला, "तुमको यह भी पता नहीं कि इस तरह चबाने से कपड़े फट जाते हैं।"

"तो क्या बात है और नये आजावेगें।" अशोक ने यह बात इतने सीधे सुभाव और हाथ नचाकर कही कि रमेश के झल्लाये चेहरे पर भी हंसी की रेखायें उभर आई। वे अपनी हंसी को अन्दर ही अन्दर रोकते हुए बोले, "वाह रे राजकुमार-इतनी आसानी से

यह बात कह तो डाली—पर तुमको अगर यह पता चल जाय कि पुराने जमाने के लोग कपड़े को कितना कीमती समझते थे—तो तुमको भी पता चल जाये"...

"वे कपड़े को कीमती क्यों समझते थे ?"

"इसीलिये क्योंकि उनको वह आसानी से नहीं मिलता था।"

"मुझे तो यकीन नहीं आता।"

"आवेगा भी कैसे—यह कोई आज की बात थोड़े ही है। यह तो आज से दसियों हजार साल पहले की बात है।" रमेश ने यह कह कर अशोक के अन्दर जानने की इच्छा को तेज कर दिया। अशोक थोड़ा गम्भीर होकर बोला, "दसियों हजार साल पहले क्या आदमी हमारी तरह कपड़ा नहीं पहनता था।"

"हां—नहीं पहनता था—उस समय तो उसे यह भी पता नहीं था कि कपड़ा कैसे बनाया जाता है। उस जमाने में तो आदमी हमारी तरह गांव और शहर बसाने भी नहीं जान पाया था।"

"तब वह कहां रहता था ?"

"वह तब दूसरे जानवरों की तरह ही जंगलों में रहता था। कंद, मूल और शिकार में मारे गये जानवरों को खाकर अपना पेट भरता था।"

"तो क्या वह हमारी तरह कोई कपड़ा नहीं पहनता था।"

"हां वह हमारी तरह कपड़ों से लधा नहीं रहता था। शुरू में तो वह करीब करीब नंगा ही रहता था।"

"पर उसको भी तो हमारी तरह ही ठंड और गरमी सताती होगी।"

"जब उसको ठंड लगती थी तो वह जमीन के अन्दर किसी खोह में चला जाता था। या पहाड़ों की कंदराओं में छिपकर उस समय को काटता था। बरसात में भी उसे ऐसा ही करना पड़ता था।"

"तो फिर वह खोह में पड़ा खाता क्या होगा ?"

"इसीलिए तो उसको ठंड और बरसात में भी बाहर निकलना पड़ता था कि वह बहुत समय तक भूखा नहीं रह सकता था। ठंड और बरसात में बाहर निकलते समय ही उसको यह जरूरत महसूस हुई कि उसका शरीर किसी चीज से ढका जाना जरूरी है और इसके लिए उसने पहले पहल अपने शरीर को पेड़ के पत्तों और छालों से ढकना शुरू किया।"

"क्या उस जमाने में कपड़े नहीं होते थे ?"

"कपड़ा तो बड़ी बात है—उस जमाने में तो आदमी कपास भी उगाना नहीं जानता था जिससे कि कपड़ा बनाया जाता है।"

"तो फिर वह कपड़ा बनाना कैसे जाना होगा ?"

"कपड़ा बनाने की कला जानने में उसको हजारों साल लग गये। पेड़ की छालों के बाद उसने अपने शरीर को उन मरे जानवरों की खालों से ढ़कना शुरू किया जिनको वह शिकार में मार डालता था।"

"शिकार तो वह पहले भी करता था फिर शुरू में ही उसने खाल को क्यों नहीं इस्तेमाल किया।"

"इसलिए क्योंकि वह शुरू में यह नहीं जानता था कि मरे जानवर की खाल का भी कोई इस्तेमाल हो सकता है। यह तो वह बाद में तजुरबे से ही जाना कि मरे जानवर की खाल बदन को ढकने के काम आ सकती है। तजुरबे से ही वह यह जाना कि इसके लिए हिरन की खाल सबसे अच्छी रहती है।"

"क्या इसी कारण रामायण के जमाने में ऋषि लोग मृग छाला को पहनते और बिछाने के काम लाते थे ।"

"तुम ठीक कहते हो। आज भी संसार में कई जगह हैं जहां के आदमी कपड़ा पहनना नहीं जानते। वे

छालों और खालों को ही शरीर ढकने के काम में लाते हैं।

अच्छा–मुझे तो यह सुन कर अचरज होता है। पर आप यह तो बताइये कि आदमी ने कपड़ा बनाना कब और कैसे जाना ?"

"जब आदमी जानवरों की खालों को पहनने के लिये इस्तेमाल करने लगा तो उसने तजुरबे से यह जाना कि पेड़ के तनों की छाल को अगर हाथ से मला जाता है तो रस्सी बन जाती है। इस तरह आदमी ने रस्सी बनाना शुरू किया। आदमी द्वारा बनाया गया यही सबसे पहले धागा था। जब आदमी को रस्सी

वनाने की कला आ गई तो उसने घास और पेड़ों की छाल को वुनकर कपड़े बनाये और उनको ही अपने इस्तेमाल में लाने लगा।"

"भला ऐसा भी कभी हो सकता है।"

"हो सकता नहीं–हुवा है। आज भी दुनिया में अनेक जातियां इसी तरह के कपड़े पहनती हैं।

"तव तो ठीक है–अच्छा फिर आगे क्या हुआ।"

"इसके वाद आदमी को पता चला कि कुछ खास पौधों की छाल से मिलने वाले रेशे, वनाने पर, अधिक टिकाऊ होते हैं इसी तरह उनको सनके पौधे का पता चला। इस समय तक आदमी खेती करना जान गया था और वह घर वना कर रहने लगा था।"

"तो क्या आदमी पहले खेती करना भी नहीं जानता था।"

"हां–पहले वह यह भी नहीं जानता था। इसके वाद उसने अनाज के साथ ही साथ सन को भी वोना शुरू कर दिया। सन के वाद ही वह कपास उगाना जाना। इसी जमाने में आदमी को रेशों से सूत कातने की कला का ज्ञान हुआ और वह रेशों को कातने भी लगा।"

"कातने के लिये तो वे चरखा ही काम में लाते होगें"

"जनाब चरखे का तो उस समय कुछ भी पता न था। उस जमाने के लोग तो आज की तरह की तकली भी नहीं जानते थे। पर हां वे तकली जैसा एक औजार सूत कातने के काम लाते थे जिसको वे पैवनी कहते थे। इसी पैवनी में बाद में अनेक सुधार हुये और आज की तकली बनी। इस जमाने की धातु और पत्थर की बनी बहुत सी तकलियां तो आज के जमाने में भी खोदने पर पाई गई हैं। क्योंकि पत्थर और धातु की बनी होने के कारण काल उनका कुछ बिगाड़ नहीं सका।"

रमेश कुछ रुक कर बोले, "हां तो मैं कह रहा था कि जब आदमी ने सूत कातने का एक सही ढंग निकाल लिया तो वह बुनाई का भी सही ढंग निकालने की सोचने लगा। काफी छान बीन करने पर, खोज परख करने पर, वह करघे जैसा एक औजार बुनने के लिए बना पाया।"

"पुराने जमाने का करघा तो आज के करघे जैसा नहीं होता होगा।"

"तुम ठीक कहते हो, पुराना करघा लकड़ी के दो तख्तों का बना होता था। इन तख्तों के बीच में एक पाया लगाकर दोनों को जोड़ दिया जाता था। कुछ

धागे इस पाये पर बांध दिये जाते थे। इसी पर बुनाई होती थी। जो धागे पाये पर बांधे जाते थे उनको ही आदमी बाद में ताना कहने लगा।"

"अच्छा—मैं तो समझता था कि ताना बाना शब्दों को यों ही इस्तेमाल करते हैं अब मेरी समझ में आया कि ताना किसे कहते हैं।"

"बीच में यों मत बोलो इससे सिलसिला टूट जाता है। पुराने करघे में ताने के धागे सख्त और खिचें रहे, इसके लिए उसके दूसरे सिरे को एक पत्थर लपेट और बांधकर लटका दिया जाता था। उस जमाने में बुनने का काम भी बड़ी मेहनत का था।"

"कैसे"

"उस जमाने का बुनकर अलग से एक एक धागा लेता था उसको पायों से बंधे इन ताने के धागों में को हाथ से एक ओर से दूसरी ओर को निकालता था।"

"किस तरह"

"ठीक उसी तरह जैसे कि पलंग को बुनते समय हम निवाड़ को निकालते हैं। जिस धागे को इस ताने में को निकाला जाता था वही बाद में बाने का धागा या बाना कहलाने लगा, यही ताने बाने की कहानी है। इस तरह बाने को ताने में निकालने में बड़ी

परेशानी होती थी इसलिये आदमी बाने के धागे को ताने में निकालने के लिये लकड़ी या हड्डी का इस्तेमाल करने लगा। वह इस टुकड़े पर बाने के धागे को लपेट लेता था। इस तरह ताने में बाना निकालना आसान हो गया और एक धागा काफी देर तक चलता रह सकता था। इसके बाद बराबर सुधार होते रहे और उन सुधारों का फल ही यह हमारी ढरकी या भरनी है।"

"पिता जी यह तो मैं समझ गया कि आदमी ने बुनने की कला का विकास किस तरह किया। अब आप वह बताइये कि सबसे पहले इसकी ईजाद कौन से देश वालों ने की।

"यह सवाल तुमने ठीक पूछा अशोक। कहते हैं कि इसकी ईजाद सबसे पहले हमारे देश में ही हुई। हमारे देश वाले ही सबसे पहले कपास की खेती करना जाने। यहीं पर तकली से चरखे का विकास हुआ और यहीं पर पहले पहल करघा बनाया गया।"

आज से तीन हजार साल पहले भी दूसरे देश हमारे यहां का बना कपड़ा मंगाते थे।

"जब भारत के कपड़े की इतनी मांग उन दिनों

थी तो जरूर कपड़े वनाने की मशीन से ही उन दिनों सूत काता और कपड़ा वुना जाता होगा।"

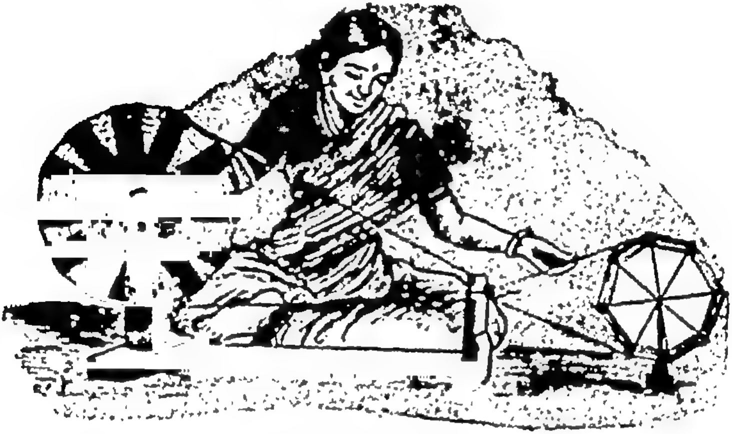

"यह वात नहीं है अशोक—हम लोग तो पिछले दो सौ साल तक भी हाथ से कते सूत को हाथ करघे पर वुनते आए हैं। कपड़ा वनाने के लिये मशीन का इस्तेमाल तो दुनिया में अभी पिछले तीन सौ सालों से हुआ है। पर सच पूछो तो इन मशीनों ने ही भारत को गुलाम वनाया और हमको वरवाद किया है।"

रमेश थोड़ा रुक कर वोले, "हां तो मैं कह रहा था कि पुराने जमाने में वुनाई की कला पीढ़ी दर पीढ़ी चलती थी। जो लोग वहुत वारीक तरह का कपड़ा वनाना जान गये थे वे अपनी इस कला को

छिपा कर रखते थे। उस जमाने में कपड़ा रंगाई और छपाई की कला भी बहुत ऊंचाईं पर पहुंच गई थी।"

"सच"

"सच नहीं तो क्या झूठ—हाथ कती और हाथ बुनी ढाका की मलमल तो आज भी सारी दुनिया में प्रसिद्ध है, उस जमाने में तो यह एक कहानी सी बन गई थी। मसूलीपट्टम की छींट और बनारस की जरी को भी लोग क्या आज पसन्द नहीं करते। यह सब हमारे उन पुरखों का ही प्रताप है। ढाका की मलमल तो इतनी बारीक होती थी, कि १५ गज का मलमल का थान केवल पौन छटांक ही होता था।"

रमेश थोड़ी देर को रुके और फिर एक लम्बी सांस भर कर बोले, "पर भाप की ताकत ने आकर सब कुछ गड़बड़ा दिया।"

"भाप की ताकत से आपका क्या मंशा है।"

"वही जिससे रेल का इंजन चलता है और जिससे कपड़े की मशीनें चलाई जाती हैं। आज से तीन सौ साल पहले इंग्लैंड के लोगों ने यह जान लिया कि भाप की ताकत को आदमी अपने फायदे के लिए

इस्तेमाल कर सकता है। फिर क्या था लोगों ने धड़ाधड़ ऐसी मशीनों की ईजाद कर डाली, जो भाप की ताकत को इस्तेमाल करके अपने आप चलती थी। कुछ लोगों ने इसी तरह की सूत कातने और कपड़ा बुनने की भी मशीन बना डाली।"

"तो इससे हमको क्या नुकसान हुआ ?"

"जब सूत कातने और बुनने की मशीनें बिना आदमी की मदद के कपड़ा बनाने लगी तो वह कपड़ा हाथ के कपड़े से सस्ता पड़ने लगा। इसका सबसे बुरा असर भारत पर ही पड़ा, जहां पर कपड़ा बनाने का सारा काम हाथ से किया जाता था। वह मशीनी कपड़े के सामने खड़ा न रह सका। इसके बाद अंग्रेजों ने मिश्र के एक भाग में स्वेज नहर बनाकर इंग्लैंड से भारत आने का जहाजी फासला कम कर दिया।"

"किस तरह ?"

पहले यूरोप से जहाज अफ्रीका का चक्कर लगा कर आते थे, स्वेज नहर के बन जाने से वे सीधे आने लगे। इससे यूरोप से माल लाने का खर्चा कम हो गया। इसका फल यह हुवा कि कपड़े की जन्मभूमि भारत के बाजारों को इंग्लैंड के मशीनी कपड़े से भर

दिया गया। इससे चरखा और करघा जो हमारे गांवों की बुनियाद थे वे खत्म होने लगे। उनमें लगी बुनकरों और कत्तनों की रोजी इंग्लैंड की मशीनें छीनने लगी। इसके बाद के भारत के कपड़ा उद्योग की कहानी बेबस, गरीब बुनकर और कत्तनों के खून से लिखी हुई कहानी हैं।"

"पिता जी इसके बाद क्या हुआ।"

"इसके बाद, हाथ कते सूत को दफना कर हाथ करघे का उद्योग एक बार फिर जिंदा हुआ पर हाथ कते सूत की जगह पर अब वह मशीन का कता सूत इस्तेमाल करने लगा था। यह सन् १९०० के आसपास की बात है। उस समय हाथ करघा उद्योग ११ करोड़ सेर मशीन सूत हर साल इस्तेमाल करती थी और ६४ करोड़ गज कपड़ा हर साल तैयार करता था। जब कि कपड़े बुनाई के कारखाने उस समय साढ़े चार करोड़ सेर सूत इस्तेमाल करके ४२ करोड़ गज कपड़ा बनाते थे।

"इस सब को मुझे बताने का मतलब ?"

"यही कि उस जमाने में बुनाई के कारखाने जितना सूत इस्तेमाल करते थे उससे दुगना सूत हाथ करघा काम में लाता था। उस समय बुनने की मिलों

को हाथ करघे से मुकावले करने का कोई सवाल ही नहीं उठता था। पर १९२६ के बाद कपड़ा मिलों ने कपड़ा तैयार करने की ताकत को काफी बढ़ा लिया। इससे हाथ करघा उद्योग की हालत बुरी हो गई। बुनकरों को भूखे रहने तक की नौवत आ गई। बीच के दिनों में हाथ करघा उद्योग फिर कुछ पनपा। १९३९ में हाथ करघों ने १७० करोड़ ३२ लाख गज कपड़ा तैयार किया पर इसी साल कपड़ा मिलों ने ३९० करोड़ ५३ लाख गज कपड़ा बनाया। इस तरह ३९ साल में हाथ करघा उद्योग की पैदा करने की ताकत केवल पौने तीन गुना बढ़ी जबकि मिलों की ताकत सवा नौ गुनी बढ़ गई।"

रमेश कुछ रुके तो अशोक बोल उठा, "पिता जी फिर क्या हुआ।"

"दुनिया की दूसरी बड़ी लड़ाई ने एक बार फिर हाथ करघा उद्योग को ऊपर उठने का मौका दिया। इस जमाने में हाथ करघे के कपड़े की मांग बहुत बढ़ गई पर इससे कोई खास फायदा इसलिए नहीं उठाया जा सका क्योंकि हाथ करघों को मशीन का कता सूत कम मिल पाया। जब देश को आजादी मिली तो उसके बाद सरकार ने इसको ऊपर उठाने की ओर

ध्यान दिया है और अब धीरे धीरे इस उद्योग की हालत ठीक होती जा रही है।”

रमेश फिर कुछ रुक कर बोले, जब से देश आजाद हुआ है। तब से सरकार हाथ करघा उद्योग की ओर काफी ध्यान देने लगी है। सरकार ने एक हाथ करघा बोर्ड बनाया है, जो करघा उद्योग को आगे बढ़ाने का काम करता है। इसके लिये सरकार ने मिल कपड़े पर कर लगाया है। इससे हर साल पांच करोड़ रुपये की आमदनी होती है। यह सारा रुपया हाथ-करघा बोर्ड द्वारा इस उद्योग को आगे बढ़ाने में खर्च किया जाता है। इसमें से बुनकरों को सहकारी समितियां बनाने के लिए दान और कर्ज दिया जाता है। हाथ करघे से बुना, जो कपड़ा सरकारी दुकानों और सहकारी समितियों के जरिये बेचा जाता है, इसी में से उस पर छूट भी दी जाती है। गांवों में नये तरीकों और औजारों का प्रचार करवाया जाता है। बड़े-बड़े शहरों में सरकारी दुकानें खोली जाती हैं। बुनकरों को सुधरे औजार दिये जाते हैं। इस उद्योग को सुधारने के ख्याल से सरकार ने बनारस में करघा उद्योग की समस्याओं को हल करने के लिए एक केन्द्रीय डिजायन संस्था बनाई है।

"पिता जी हमारी सरकार करघा उद्योग की हालत सुधारने के लिये बड़ा काम काज कर रही है पर ये सहकारी समितियां क्या होती है।"

सहकारी समितियों का मतलव है कि वुनकर आपस में मिल जुल कर ही सूत खरीद से कपड़ा वेचने तक का सारा काम खुद करें। वीच के दलाल को कोई मुनाफा इनमें नहीं मिल पाता। सहकारी समितियों द्वारा वुनकरों को सूत दिया जाता है। इन समितियों में वुनकरों की गरीवी को दूर करने की वहुत वड़ी ताकत छिपी पड़ी है। ये समितियां आज इस हालत में हैं, कि वे अपने आस पास के वुनकर मेम्वरों के लिए रंगाई, छपाई के वड़े कारखाने खोल सकती हैं। इनमें रङ्गाई और छपाई किराया देकर करवाई जा सकती है। ये कपड़े को वेचने का इन्तजाम भी कर सकती हैं, जिससे वीच के दलालों को निकाला जा सकता है। पर अभी तक देश के ज्यादातर वुनकर असंगठित ही हैं। मद्रास के १०० में से ३०-४० वुनकर ही इन समितियों के मेम्वर वने हैं। १९५५ के अप्रैल तक इन समितियों के ९ लाख मेम्वर हो चुके थे।

रमेश कुछ रुक कर बोले, देश में हाथ करघे के बहुत से कारखाने हैं। इनमें करीव ३० हजार बुनकर मजदूरी पर काम करते हैं। सरकार ने इन कारखानों को सहकारी समितियों में बदलने का तय किया है। इससे कारखानों में बुनकर मजदूर नहीं, मालिक हो जावेंगे। कारखाने के लाभ में भी उनका हिस्सा हो जावेगा। इससे कपड़े की पैदावार में भी बढ़त होगी। सरकार ने ऐसे तीन कारखानों को सहकारी समितियों में बदल भी दिया है। इनमें से दो मलाबार जिले में और एक मदुरई जिले में है।

'क्यों नहीं' और भी बहुत सा काम सरकार कर रही होगी। १९५२ से मार्च १९५५ तक सरकार तरह तरह की योजनाओं पर साढ़े छः करोड़ रुपया खर्च कर चुकी है। सरकार ने तय किया है, कि मिलों में कपड़ा बुनाई के काम को आगे बढ़ाने वाली योजनाओं को १९६४ तक रोक दिया जावे। दो सूत कातने वाली मिलें बुनकरों की सहकारी समितियों ने वनाई हैं। इन से बुनकरों को कम भाव पर सूत दिया जा सकेगा। सरकार ने यह तय कर दिया है कि साड़ी, लूंगी और दूसरी तरह के कुछ कपड़े केवल हाथ करघा ही बना सकता है, मिलें नहीं। हाथ कपड़े के

वेचने के लिए एक केन्द्रीय विक्री संस्था खोली गई है इसकी शाखायें सारे देश में हैं। सरकार ने देश की गरीवी को दूर करने के लिए पांच साला योजना वनाकर काम कर रही है। दूसरी पांच साला योजना में तो सरकार ने हाथ करघा उद्योग पर कुल मिला कर साढ़े उसंठ करोड़ रुपया खर्च करना तय किया है। 'पिता जी हाथ करघा उद्योग को असल में वड़े वुरे दिन देखने पड़े हैं।

"हां वेटा, पर फिर भी इसमें लोगों को रोजी देने की ताकत अद्भुत है। यह आज देश की कुल जरूरत का केवल एक तिहाई कपड़ा ही तैयार करता है फिर भी यह एक करोड़ लोगों की रोटी का इंतजाम कर देता है। दूसरी ओर जो कपड़ा मिलें देश की कुल जरूरत का दो तिहाई कपड़ा तैयार करती हैं वे केवल सात लाख आदमियों को काम दे पाती हैं।

"पिता जी अगर सारा कपड़ा हाथ करघा से वुना जाने लगे, फिर तो वहुत लोगों को काम मिल सकता है।"

"सो तो है ही—अगर देश के कपड़े की कुल जरूरत हाथ करघे द्वारा पूरी की जाय तो दो करोड़ आदमियों को और रोटी मिल सकती है—पर इस वात

को लोग हंसी में टाल देते हैं वे तो इस तरह सोचते हैं कि देश की जरूरत कासारा कपड़ा ही मिलों से क्यों नहीं बनवाया जाय । वे वेचारे यह नहीं जानते कि इस तरह मिलों में तीन लाख मजदूरों को और रोजी मिल जायगी । पर एक करोड़ उन लोगों की रोटी छीन कर जो आज हाथ करघा उद्योग में लगे हुए हैं।

अशोक पर रमेश की बातों का बड़ा असर पड़ा। वह कुछ शर्मिंदा सा बोला ," पिता जी आज आपने मेरी आंखें खोल दी हैं । कपड़ा मेहनत से ही नहीं बुना जाता वरन् उसमें लगे लोगों की हालत भी खराब है । इसलिए मैं वचन देता हूँ कि आगे से कपड़े तो कभी फाडूगां ही नहीं, वरन् जहां तक बन पड़ेगा हाथ करघे के कपड़े ही पहनूगां । भले ही वे कितने मोटे क्यों न हों ?

हाथ करघा उद्योग

कुछ बुनकर खुद सूत खरीद कर अपने करघों पर बुनाई करते हैं और कपड़ा बनाकर उसको खुद ही बाजार में वेच आते हैं । ये बुनकर, आमतौर पर, केवल पेट भरने लायक ही रोजी कमा पाते हैं ।

देश में हाथ कपड़े के कारखाने भी हैं। इनमें कारखाने का मालिक वुनकरों को अपना सूत वुनाई पर देकर वुनवाता है। जव वाजार की हालत कुछ अच्छी होती है, तो वह इनको नौकर भी रख लेता है। वुनकर ऐसे कारखानों से पूरे साल वंधे नहीं रहते। जव वाजार मंदा पड़ जाता है, तो कारखाने वाले वुनकर को काम पर से हटा देते हैं। इनकी वुनाई की दरें भी काफी कम होती हैं।

हाथ कपड़े के कुछ कारखाने ऐसे भी हैं, जो वुनकर को अपने यहां नौकर रख लेते हैं। इसमें वुनकर को यह लाभ रहता है, कि उसको साल भर रोटी मिलने का भरोसा हो जाता है। पर उसको काफी कम वेतन मिलता है।

पिछले कुछ दिनों से कुछ इलाकों में, खासकर दक्षिण भारत में, कारखानेदार की जगह सहकारी समितियां ले रही हैं। ये समितियां असल में वुनकरों के साझे में चलने वाले कारखाने ही हैं। ये वुनकरों को अपना मेम्वर वनाती हैं और अपने मेम्वरों से सूत वुनाई पर वुनवाती है। ये तैयार माल को वेचने का भी इन्तजाम करती है। समिति को जो नफा होता है, उसमें से कुछ भाग वुनकर-मेम्वर को भी मिलता

है। इसके अलावा, अधिक कपड़ा तैयार करने पर, बुनकरों को बोनस के रूप में भी कुछ रुपया दिया जाता है।

उद्योग का कच्चा माल

सूत ही इस उद्योग का खास कच्चा माल है। तैयार माल की लागत के १०० भाग में से ५० से ६० भाग तक सूत की कीमत देने में चला जाता है।

सूत का नम्बर

सूत की बारीकी या मोटापन नम्बरों में आंका जाता है। ८४० गज लम्बे सूत की जितनी गुंडियां एक पौंड (करीब आधा सेर) में चढ़ती हैं, वही गिनती सूत का नम्बर कहलाती है। १० नम्बर सूत के मतलब होते हैं कि एक पौंड वजन में १० नम्बर सूत की ८४० गज लम्बी १० गुंडियां चढ़ती हैं। ४० नम्बर सूत के मतलब होते हैं, कि ८४० गज लम्बे सूत की ८० गुंडियों का वजन एक पौंड है। नम्बर जितना कम होता है, सूत उतना ही मोटा होता है। सूत जितना महीन होता है, उसका नम्बर उतना ही ऊंचा होता है। गुंडियों का नम्बर जानने के लिए एक तराज़ू आती है। इस तराज़ू में एक ओर गुंडी लटकाने का हुक होता है और दूसरी ओर एक सुंई होती है,

जो एक पैमाने पर घूमती है। हुक में गुंडी लटकाने से सुंई हिलकर पैमाने पर एक जगह रुक जाती है। यही सूत का नम्बर होता है।

हाथ करघा उद्योग में, २ नम्बर से लेकर १२० नम्बर तक का, इकहरा सूत इस्तेमाल किया जाता है। इसमें ४२ नम्बर तक का बटा हुआ सूत भी काम में लाया जाता है। कुछ करघे हाथ कता सूत और कुछ करघे दूसरे देशों से मंगाया हुआ मशीनी सूत भी इस्तेमाल करते हैं।

१६५३ में करीब ७५ करोड़ सेर सूत मिलों द्वारा पैदा किया गया था। देश की सूती मिलें ७६ करोड़ सेर सूत तैयार करती हैं। इसमें से १४ करोड़ ४० लाख सेर सूत हर साल हाथ करघे इस्तेमाल करते हैं। देश के ३० लाख हाथ करघे एक साल में १४० करोड़ गज कपड़ा तक बना लेते हैं।

हाथ कता सूत करघा उद्योग द्वारा बहुत कम इस्तेमाल किया जाता है। देश में हर साल साढ़े तेरह लाख सेर हाथ कता सूत तैयार होता है। आमतौर पर यह १२ से १५ नम्बर तक का होता है। यह सारा हाथ करघों द्वारा बुना जाता है। इतने सूत से करीब ६४ लाख गज धोतियां और साड़ी तैयार हो पाती हैं।

बुनाई के लिए सूत की तैयारी

बुनाई करने से पहले सूत को उन अनेक तरीकों में को निकाला जाता है, जो सूत को इस लायक बनाते हैं, कि बुनाई के समय उस पर जो खिचाव और तनाव पड़ता है, उसको वह सह सके। इसके लिए पहले सूत को छांटा जाता है, उसको भिगोया जाता है और फिर खोलकर नरियों पर भरा जाता है। सूत भरी नरियों कोताना बनाने वाले वेलन पर लेपटते हैं। ताना बनाने के बाद सूत में कलफ देते हैं। अब इसको करघे के बेलन पर लपेटते हैं। लपेटने के बाद सूत के धागों को वय की आंखों में भरते हैं, उसको कंघियों में को निकालते हैं। इतना काम करने के बाद ही बुनाई का काम शुरू होता है।

सूत खोलना

आमतौर पर ताने का सूत वाने के सूत से कुछ मोटा रखा जाता है। इसके लिए मजबूत, साफ और समान सूत लेना ठीक रहता है। इसके बाद सूत को भिगोया जाता है। भिगोने से सूत मजबूत बन जाता है और वह खोलते समय टूटता नहीं।

मशीन से कता सूत, गुंडियों के रूप में, बुनकर को मिलता है। हाथ कता सूत आमतौर पर अटेरा जाता है। पर यह अटेरा हुआ सूत ऐसा होता है कि उससे नरियां भरने में काफी परेशानी होती है। नरी भरने से लेकर बुनाई करने तक, सभी कामों में हाथ कता सूत बराबर टूटता रहता है। हाथ करघे पर बुनकर लोग इसीलिए हाथ कता सूत बुनना पसन्द नहीं करते हैं।

सूत को नरियों में भरने के लिए लकड़ी के एक चौखटे पर चढ़ाते है। चौखटा लकड़ी की बुनियाद पर लगा होता है। इस चौखटे को ढोला कहते हैं। बुनियाद की लकड़ी की पेंदी में, एक लोहे की सलाई लगी होती है। इस सलाई में ही चौखटा डाला जाता है। यह सारे औजार ढोला कहलाते है। ढोले पर गुंडी को चढ़ा कर सूत खोलने के लिये उसको मामूली चरखे से जोड़ दिया जाता है। चरखे के तकुवे पर नरी चढ़ा दी जाती है और ढोले पर चढ़ी गुंडी के सूत का एक तार लेकर तकुवे पर लपेट देते है। इसके बाद चरखा चलाते हैं, तो ढोला का सूत के नरी के साथ लगा होने के कारण लोहे की सलाई पर टंगा ढोला घूमता है। उसके घूमने से चौखटा

घूमता है जिससे उस पर से सूत उतार कर नरी पर चढ़ता चला जाता है। इस ढोले को अड्डा भी कहते हैं। इसको चरखी भी कहा जाता है।

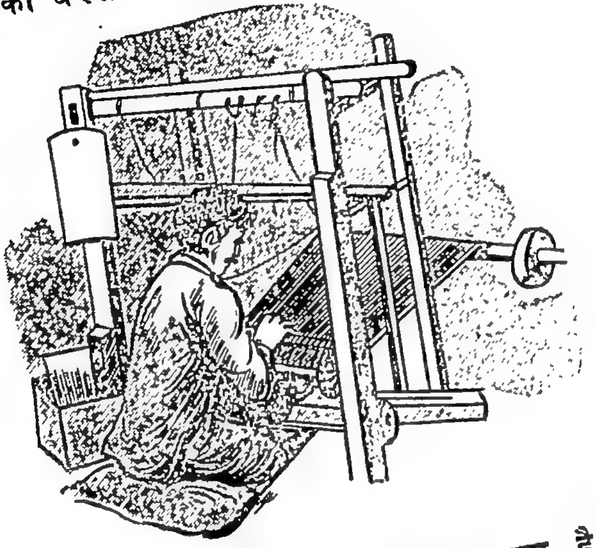

सूत नरी पर इसलिए चढ़ाया जाता है, कि गुंडियों में जितना सूत होता है, उससे कहीं ज्यादा लम्बा सूत ताना बनाने के लिए केवल एक नरी से ही मिल जाता है। इसके साथ ही अगर गुंडी के सूत में कातने में कोई कमी रह गई है, तो उसका भी पता नरी भरते समय चल जाता है। टूटे हुए धागों को इसी समय जोड़ दिया जाता है। इस काम के लिये

एक ऐसा सुधरा अड्डा भी बनाया गया है जिसमें अलग अलग नाप की गुंडियों के लिये भी एक ही ढोला काम में लाया जा सकता है।

चलता ताना

धागे को नरियों में भरने के बाद ताना पूरा जाता है। ताना पूरने का पुराना तरीका तो यह है, कि जमीन में बराबर-बराबर दूरी पर एक-एक जोड़ी बांस या लकड़ी की कमचियां गाड़ दी जाती हैं। आमतौर पर ये तीन फीट लम्बी होती हैं। कमची की दो जोड़ियों के बीच चार चार फीट का फासला रखा जाता है। दोनों ओर के सिरों पर लकड़ी की कमची के बजाय एक-एक लोहे की मजबूत छड़ धरती में गाड़ दी जाती है। इससे ताने का जो तनाव लकड़ी की कमचियों पर पड़ता है, उसको ये लोहे की छड़ सहार लेती है। कमचियों की संख्या और उनका फासला इस बात पर निर्भर करता है, कि ताने को कितना लम्बा रखना है।

दो नरी दो सलाइदार लकड़ियों में लगा देते हैं। इन लकड़ियों में आगे लोह की सलाई लगी होती

है। इस सलाइयों में ही नरियों को डाला जाता है। दोनों नरियों का धागा शुरू की जोड़ी की दोनों कमचियों से अलग अलग बांध देते हैं। इसके बाद, इनको दोनों हाथों में लेकर, हर जोड़ी कमची के पास तक जाते हैं। चलते समय लकड़ी की सलाई में नरी घूमती है, तो सूत खुलता है और ताना पूरने वाला कारीगर कमची की जोड़ी में सूत फंसा कर आगे बढ़ जाता है। इस तरह वह गड़ी हुई कमचियों की जोड़ी में एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक धागा फंसा देता है और फिर वापिस लौटता है। यही सिलसिला उस समय तक चलता रहता है जब तक कि पूरा ताना कमचियों पर नहीं पूर जाता। सूत पूरते समय कारीगर इस बात का ध्यान रखता है कि एक ओर से जाते समय कमची की जोड़ी में एक कमची पर सूत बाहर की ओर से और दूसरी कमची में अन्दर की ओर लिपटे। दूसरी ओर से वापिस आते समय ठीक इसका उल्टा किया जाता है। जब ताने लायक जरूरी धागे खड़ी लकड़ियों पर पूर दिये जाते हैं, तो लकड़ियों को सूत के साथ उखाड़ लेते हैं और उसको लपेट कर रख देते हैं।

ताना बनाने के इस तरीके में सबसे बड़ी कमी

यह है कि एक वार में केवल एक धागा ही डंडी पर चढ़ाया जा सकता है। इससे जब तक पूरा ताना पूरा जाता है, उस समय तक ताना पूरने वाला कारीगर कई मील चल लेता है। इस तरह ताना पूरने में ज्यादा जगह घिरती है। घर में छप्पर के नीचे इतनी जगह मुश्किल से होती है। इसलिये चलता ताना बाहर ही बनाते हैं। धूप, हवा, वर्षा से इसका बचाव नहीं हो पाता।

ताना पूरने की मशीन भी होती है। इनसे ताना पूरना काफी आसान और कम मेहनत का काम रह गया है।

ताना बनाने की मशीन

ताना बनाने की मशीन में एक पड़ा या खड़ा लकड़ी का ढोल होता है। इस ढोल के ऊपर ही ताना लपेटा जाता है। नरियों को लकड़ी की बुनियाद पर खड़े एक चौखटे में सलाइयों के अन्दर पिरो दिया जाता है। ये सलाइयां लोहे की होती हैं और इनको चौखटे से बाहर निकाला जा सकता है। इन सलाइयों में सूत भरी नरियों को लगा देते हैं। चौखटे में उतनी नरियां फंसा दी जाती हैं, जितने धागों का ताना बनाना होता है। सब नरियों से धागा निकाल कर

एक साथ मिला देते हैं। इन मिले धागों को एक हुक में को निकाल कर ढोल पर लपेट देते हैं। अब ढोल को घुमाते हैं। ढोल को घुमाने के लिये एक हत्था लगा होता है। हत्थे को घुमाते हैं तो ढोल घूमता है। ढोल घूमने पर, उस पर लिपटा हुआ सूत खिच जाता है। इस खिचाव के कारण नरी घूमती है और उनसे सूत निकल कर ढोल पर लिपटता जाता है।

ताने की मशीन में अनेक लाभ हैं। इससे सादे या रंगीन ताने जितनी लम्बाई के चाहें बनाए जा सकते हैं। इसमें कितने ही धागे रखे जा सकते हैं। तानों को, मन चाहे गांठों में लपेट कर रखा जा सकता है। ताना बुनकर के पास रहता है। उसमें जो काम करना चाहे, वह एक ही जगह खड़ा, कर सकता है। यह मशीन बुनकर की मेहनत और समय बहुत बचा देती है। ताने की मशीन में भी अनेक सुधार हुए हैं। मद्रास की सरकार ने तीन तरह की सुधरी ताने की मशीनें बनाई हैं।

[१] खड़ी ताने की मशीन—इसमें खुद बखुद सांथी बन जाती है।

[२] पड़ी ताने की मशीनः—इस में ४० नरियों से निकले, सब धागे एक ही हुक में को होकर निकाले जा सकते हैं और ढोल पर ताना शंख की तरह के

घेरे बनाता हुआ चढ़ता जाता है।

[३] पढ़ी ताने की मशीनः—इसमें २० रंग-बिरंगे सूत वाली नरियों से ताना बनाया जा सकता है।

बनारस में हाथ करघा उद्योग में खोज करने वाली एक सरकारी संस्था है। इस संस्था ने ताना भरने की एक ऐसी खड़ी मशीन बनाई है, जिससे खुद बखुद ताना भर जाता है। यह इकहरे या बटे हुए, दोनों तरह के सूत से ताना बनाने के लिये इस्तेमाल की जा सकती है। यह बहुत कम जगह घेरती है।

सूत बुनाई

ताना बनाने के बाद सूत को बुना जाता है। बुनाई के मतलब होते हैं, सूत के धागे में बाने के धागे को निकाल कर, मकड़ी के जाले जैसा ताना बाना तैयार करना। बुनाई के लिए बहुत पुराने जमाने से खड्डी या करघा इस्तेमाल किया जाता है। खड्डी में बुनाई गड्ढे में बैठकर की जाती है और करघे में एक बैठक पर बैठ कर बुनने का काम करते हैं।

आजकल आम तौर पर बुनने के लिये करघा इस्तेमाल किया जाता है। करघा लकड़ी का बना होता है। इसमें १३-१४ खास भाग होते हैं। ताना लपेटन होता है। यह लकड़ी का एक बेलन होता है। इस पर ताने को लपेटा जाता है। कंघी होती है, बय

होती है जिसको सहारा देने वाली बयसरें होती हैं। बय को लटकाने वाले गोल लकड़ी के डंडे होते हैं। बैठने के लिये लकड़ी का तख्ता होता है, जिसको बैठक कहते हैं। पैरों से चलाने के लिये पावड़ी होती हैं, वजन टांगने की रस्सी होती है और कपड़ा लपेटन होता है, जिस पर बुना हुआ कपड़ा लपेटा जाता है। ढरकी होती है। ढरकी के लिये कंघी से लगे हत्थे में दोनों ओर दो घर होते हैं, जिनको करघे की पेटी कहा जाता है। ढरकी को चलाने के लिये एक मुट्ठी होती है। इस मुट्ठी की मदद से ही ढरकी को इधर-उधर फेंका जाता है। इसीलिए यह ढरकी फेंकने वाला करघा कहा जाता है। इसको झटका करघा भी कहते हैं क्योंकि हत्थे से झटका देकर ढरकी को चलाया जाता है। करघे का यह सारा सामान लकड़ी के एक खड़े ढांचे पर सजा होता है।

ताना लपेटनः—करघे पर बुनाई करने में सबसे पहले ताना लपेटन पर ताना लपेटा जाता है। लपेटन के दोनों ओर लकड़ी के दो गोल पहिए होते हैं। यह गोल पहिए ही ताने की चौड़ाई तय करते हैं। ताने को जितना चौड़ा रखना होता है, इस गोल पहिये को इधर-उधर सरका कर, लपेटन के वेलन में उतनी ही जगह बना ली जाती है। वेलन पर ताने को लपेटते

समय धागों को एक सीध में रखा जाता है और कोशिश यह की जाती है कि उन पर एक सा तनाव पड़े। ताना-मशीनों पर बनाए गए ताने को तो लपेटन पर सीधा ही लपेट दिया जाता है, लेकिन चलते ताने आदि को लपेटन पर लपेटने में थोड़ी मेहनत करनी पड़ती है।

लपेटन दो तरह के होते है। एक में ठोस गोल लकड़ी होती है, जिसके दोनों ओर लकड़ी के दो गोल पहिये होते हैं। दूसरी तरह के लपेटन में एक फीट मोटी लकड़ी होती है। उसमें एकसी दूरी पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक चार लकड़ी के पहिए फंसे होते हैं। इन पहियों के चारों ओर बराबर लकड़ी की आठ चपटी पट्टियां लगी होती है, इसी पर ताना लपेटा जाता है।

वय भरनाः– करघे में बय होती है। ये बयसरें में लगी होती हैं। वय ताने के धागों को एक सिलसिले में रखने का काम करती है। ताने के धागों में से, कुछ को ऊपर उठाती और कुछ को नीचे गिराती है, इस तरह वे धागों को सिलसिलेवार अलग अलग रखती है।

वय दो तरह की होती हैः– आंख वाली वय और फड़ी वाली वय के तीन भाग होते हैं : तार, आंख

श्रौर बयसरा। श्रांख को नकुवा भी कहा जा सकता है।

श्रांख वाली बय तार या फौलाद की बनी होती है। यह श्रांख एक गोल छल्ला होता है। इसमें दोनों श्रोर दो छोटे-छोटे सुराख होते हैं। इन सुराखों में ही तार को बांधा जाता है। श्रांख को बांधने के लिये सूत श्रौर धातु दोनों के तार इस्तेमाल किये जाते हैं। कपड़ा मिलों में सूत के धागे वाली बय इस्तेमाल की जाती है। हाथ करघे में सूत श्रौर धातु दोनों तरह के तारों वाली बय काम में श्रा सकती है। सूत वाली बय में धागे को मजबूत श्रौर सख्त बनाने के लिए, उस पर रोगन हुश्रा रहता है।

बय में नीचे श्रौर ऊपर दोनों तरफ फन्दे एक गोल या चपटी लकड़ी में पिरो दिये जाते हैं। इस लकड़ी को बयसरा कहते हैं। इस में खांचे पड़े होते हैं। इन खांचों में उस रस्सी को कस कर बांध देते हैं, जिस पर बय की गांठें बांधी जाती हैं। बय को बयसरे में पिरोते समय गांठें लगानी पड़ती हैं।

कड़ी वाली बय एक तरह की सांकल जैसी होती है। इसको बयसरे में बांधने में श्रांख वाली बय से श्रासानी रहती है। पर इसको खुद ही बनाना पड़ता है। श्राजकल कड़ी वाली बय बहुत कम इस्तेमाल की जाती है। कड़ी वाली बय को कपड़ा बुनते समय

हाथ से खिसकाना पड़ता है। खिसकाते समय बय और धागे में रगड़ होती है। इससे धागे घिस जाते हैं। आंख वाली वय में से, बुनते समय धागा अपने आप खिसकता रहता है। इससे सूत में कम रगड़ होती है और वह कम खिचता है।

वय भरने में दोनों हाथों को काम में लाया जाता है। एक वयसरे पर पिरोई हुई वयें ली जाती हैं। बयसरे को एक चौखटे पर टांग देते हैं। इसे चौखटे को ताना चढ़े लपेटन के सामने रखते हैं। बय भरने के लिये दो आदमी ठीक रहते हैं।

एक आदमी वय के पीछे और एक आदमी बय के सामने ताना हाथ में पकड़ कर बैठ जाता है। वय को दायें या बायें दोनों ओर से भरा जा सकता है। बय के पीछे बैठा हुआ आदमी बय की आंख में को धागा-भरनी नाम का सुवा डालता है।

धागा-भरनी लोहे की चपटी सींक होती है। इसके आगे का सिरा तकली के सिरे जैसा होता है। इसी में धागे को पकड़ा जाता है। इसके पीछे एक हत्था लगा होता है।

बय के सामने बैठा आदमी, आंख में से निकली धागा-भरनी में ताने का एक धागा फंसा देता है। बय के पीछे बैठा आदमी धागा-भरनी को फौरन वापस

खींच लेता है, तो धागा आंख में से आर-पार निकल जाता है। इसी तरह से वयसरे की सारी वय भरी जाती है। कपड़े की बुनत के हिसाब से कम से कम चार वयसरें इस्तेमाल किये जाते हैं। बुनत जितनी जटिल होती जाती है, वयसरों की संख्या उतनी ही बढ़ती जाती है। एक बुनत के लिये कम से कम चार वयसरों की जरूरत पड़ती है। चार वयसरों की वय भरने से दो पावड़ी की पूरी वय बंध जाती है। दो वयसरों को एक पावड़ी से जोड़ देते हैं और बाकी दो वयसरों को दूसरी पावड़ी से बांध देते हैं। बुनते समय वय को नीचे दबाने या ऊपर उठाने के लिये जिन पटरियों का इस्तेमाल किया जाता है, उनको पावड़ी कहते हैं। पावड़ी लकड़ी की मामूली लम्बी पट्टियां होती हैं।

कंघी भरना:—बुनते समय ताने के धागों को बराबर फासले पर रखने का काम कंघी करती है। इससे बुने हुए कपड़े को सटाने और ठोकने का काम भी लिया जाता है।

कंघी का काम सूत में कंघा करना होता है। इसका रूप भी बहुत कुछ लम्बे कंघे जैसा होता है। मिलों में कन्घों के दांतों को लोहे की सींकों का बनाते हैं। हाथ करघे में जो गीला बाना इस्तेमाल करते हैं,

उससे कंघी की लोहे की सींकों में जंग लगने का डर रहता है। इसलिये इसमें नरकट की सींकों से कंघी बनाते हैं।

कंघी की सींक या दाँतें को सय कहते हैं। सय को बांधने का धागा ही कंघी के घरों का फासला तय करता है। सूत के नम्बर के साथ साथ इस धागे की मोटाई भी बदलती रहती है। कंघी के एक इंच में कितने घर रखने हैं, इसी हिसाब से सय और सय बांधने का धागा लिया जाता है। कंघी बंधी बंधाई भी मिल जाती है। उसको बुनकर भी खुद बना लेते हैं।

कपड़ा बुनते समय चौड़ाई में कुछ घटता है। धोने के बाद वह और भी घट जाता है। इसलिए धोने के बाद कपड़ा जितना चौड़ा रखना होता है, कंघी की लम्बाई उससे दसवां भाग अधिक रखी जाती है। नयी बांधी हुई कंघी को करघे में इस्तेमाल करने से पहले घिसा जाता है। इससे सींकों का खुरदरा पन दूर हो जाता है।

कंघी भी ठीक उसी तरह भरी जाती है जैसे बय भरी जाती है। कंघी में ताना पिरोने के लिये दो आदमी ठीक रहते हैं। एक आदमी कंघी के पीछे और एक आदमी कंघी के सामने ताना पकड़ कर बैठता है। कंघी में धागा-भरनी की मदद से ताने के

धागे उसके घरों में निकाल लिये जाते हैं ।

हर नयी बुनत के लिये ताने के धागों को वय और कंघी में भरने की जरूरत पड़ती है। अनेक वार एक ही बुनत का बहुत सारा कपड़ा तैयार करना होता है। इसके लिये जव एक ताना पूरा बुन लिया जाता है, तो वय और कंघी में निकले धागों को बुने कपड़े से काट कर अलग रख दिया जाता है। उसी बुनत का और कपड़ा तैयार करने के लिये यह किया जाता है कि ताने के धागे को वय और कंघी में पहले से भरे और कटे हुये धागों के साथ जोड़ दिया जाता है। इस तरह वारवार कंघी और वय भरने की मेहनत बच जाती है।

ढरकी या भरनी : बुनते समय ताने के धागों में बाने के धागों को निकालने के लिये जो औजार काम में लाया जाता है, उसे ढरकी या भरनी कहते हैं। ढरकी का रूप नाव जैसा होता है। इसलिसे इसको कहीं पर डोंगी भी कहा जाता है। ढरकी दो तरह की होती है, घूमती नरी वाली और अचल नरी वाली। घूमती नरी वाली ढरकी में गीला सूत भी भरा जा सकता है। इसमें सूत अधिक वोझीला नहीं वनता। पर इसमें नरियां ढरकी की सलाई में वार वार पिरोने से जल्दी टूट जाती हैं।

घूमती नरी वाली ढरकी लकड़ी या लोहे की बनी होती है। इसके एक सिरे पर छेद होता है और दूसरी ओर खांचा होता है। इसके अन्दर बीच में एक कब्जेदार सलाई होती है, जिसको ऊपर उठाया और नीचे गिराया जा सकता है। इसी सलाई में नरी को पिरोते हैं। नरी से निकला धागा ढरकी के छेद से बाहर निकाल लिया जाता है। जब ढरकी ताने में को निकलती होती है, तो उसकी नरी एक मीठी आवाज करती हुई, सलाई में तेजी से घूमती है और धागा छोड़ती जाती है।

वाने की नरी भरना : ढरकी में जो नरी लगाई जाती है, उसको वाने की नरी कहते हैं। वाने का सूत भिगो कर नरी में भरना अच्छा रहता है। सूत भरने की यह नरी पोली होती है। यह लकड़ी या टीन की बनाई जाती है। लकड़ी की नरी में सूत को जंग नहीं लगता, पर टीन की नरी में लग जाता है।

बुनाई: बय और कंघीमें भरे ताने को लेकर लपेटन को करघे के ढांचे में बैठाते हैं। इसके लिये ढांचे के पिछले भाग में लकड़ी के दो खम्भे होते हैं। इनमें खांचे बने होते हैं इन्हीं खांचों में लपेटन को फंसाया जाता है। ताना लपेटन को करघे के ढांचे में लगाने के बाद धागों से भरी बयों को करघे में लगाते हैं।

इसके लिये वय वाले वयसरों को ढांचे में लगी घिरियों से बांधना पड़ता है। एक घिर्री के दोनों ओर एक डोरी चढ़ा दी जाती है। इस डोरी के दोनों सिरों से एक जोड़ी वय के दोनों वयसरे अलग अलग बांध दिये जाते हैं। जितनी जोड़ी वय होती है उतनी ही ढांचे में घिरियां रखते हैं। इस तरह बांधने से पावड़ी द्वारा जब एक वय नीचे को दबाई जाती है तो जोड़ी की दूसरी वय अपने आप ऊपर उठ जाती है।

अब ताने भरी कंघी को करघे के हत्थे में लगाते हैं इस हत्थे में कन्घी लगाने की जगह बनी होती है। उसी में यह फंसा दी जाती है। इसके बाद कन्घी से निकले धागों को कपड़ा लपेटन पर गाठें लगाकर जोड़ दिया जाता है।

कपड़ा लपेटनः—कपड़ा-लपेटन भी ताना लपेटन की तरह का होता है। कपड़े की बुनाई, सफाई आदि इस पर काफी निर्भर करती है। इस लपेटन का आकार गोल नहीं, चपटा रखा जाता है। इससे लिपटा कपड़ा ढीला नहीं पड़ता। झटके करघे पर कपड़ा-लपेटन की जगह एक पतली चौरस पट्टी लगी होती है। इस पट्टी पर से कपड़ा आकर, नीचे पावड़ी से कुछ ऊपर, गोल कपड़ा-लपेटन पर लपेटा जाता है।

इसके बाद बुनकर करघे में बनी बैठक पर बैठता

है। हत्थे के दोनों सिरों में लकड़ी की दो पेटियां बनी होती हैं। इसमें से एक पेटी में, वह नरी लगी ढरकी को रखता है, ये पेटी ढरकी का घर कहलाती है। ढरकी को चलाने के लिये हत्थे के ऊपर एक डोरी में बंधी मुट्ठी लटकी होती है। इस डोरी के साथ एक और डोरी जुड़ी होती है। दूसरी डोरी का दूसरा सिरा पेटी के एक भाग से जुड़ा होता है। यह भाग सिरखूंटी कहलाती है। मुट्ठी की डोरी इसी तरह दूसरी ओर दूसरी पेटी की सिर खूंटी की डोरी से जुड़ी होती है।बुनकर अब करघे पर बुनना शुरू करता है। उसके पैर इस समय पावड़ियों पर होते हैं। मामूली बुनत के कपड़े के लिये दो पावड़ी रखते हैं जटिल बुनत के लिये आमतौर पर चार पावड़ियां रखी जाती हैं।

बांई ओर से दाहिनी ओर को ढरकी फेंकनी होती है, तो बांई पावड़ी को दबाते हैं। दाहिनी ओर से बांई ओर को ढरकी फेंकनी होती है तो दाहिनी ओर की पावड़ी दबाई जाती है। बुनकर पावड़ी को झटका देकर दबाता है तो पावड़ी से जुड़ी बय की जोड़ी में से आधी ऊपर उठ जाती है और आधी नीचे को दब जाती है। ऐसा करने से बयों के अन्दर भरे ताने का कुल धागा दो भागों में बंट जाता है। धागों का एक भाग ऊपर उठा रहता है और दूसरा भाग नीचे दबा हुआ रहता है। इससे ताने में एक रास्ता बन जाता है।

बुनकर अब मुट्ठी को, बांई या दाहिनी ओर को खींच कर झटका देता है। मुट्ठी को खींचने से, मुट्ठी की डोरी सिर-खूंटी की डोरी को खींचती है। इससे सिर-खूंटी पेटी में रखी ढरकी को जोर से धक्का देकर बाहर निकालती है। ढरकी हत्थे पर बने ताने के रास्ते में को एक ओर से घुसती हुई दूसरी ओर से निकल जाती है। जब ढरकी ताने में को गुजरती है तो उसके अन्दर नरी घूमती हुई बाने का धागा छोड़ती चली जाती है। इससे बाने का धागा ताने के अन्दर भर जाता है। ढरकी ताने में से निकल कर दूसरी पेटी के अन्दर घुस जाती है।

बुनकर दबी पावड़ी पर से पैर का जोर कम कर देता है, तो वह फिर अपनी पहली जगह आ जाती है। अब बुनकर हत्थे को पकड़कर कपड़ा लपेटन की ओर आगे को करता है। इससे हत्थे में लगी कन्घी बाने के धागे को ताने में आगे बढ़ाकर ठोक देती है। बाने और ताने के धागे एक ताना बाना बना कर। कपड़ा बना देते हैं।

बुनकर अब दूसरी पावड़ी को दबाता है। इस पावड़ी से जुड़ी बय की जोड़ियों में से एक ऊपर को उठ जाती है और बाकी नीचे को दब जाती हैं। ताने का धागा फिर दो भागों में बंट जाता है। इससे ताने में फिर एक रास्ता बन जाता है। बुन कर मुट्ठी को

झटका देकर अब की बार दूसरी ओर को खींचता है, तो दूसरी ओर की सिर-खूंटी की डोरी खिंच जाती है। इससे सिर-खूंटी ढरकी को धक्का देकर फिर पेटी से बाहर निकाल देती है। ढरकी धागे के बने रास्ते में को निकलती हुई फिर पहली पेटी में घुस जाती है। अपने पीछे वह बाने का धागा ताने में छोड़ती चली जाती है।

बुनकर दूसरी पावड़ी पर से पैर की दाव कम करता है, तो दूसरी पावड़ी अपनी असली जगह पर लौट आती है। दो भागों में बटा हुआ ताना फिर एक हो जाता है। हत्थे को आगे पीछे करके, कंघी से फिर बाने के धागे को ताने में ठोका जाता है, और फिर पहली पावड़ी दबाई जाती है। बस इसी तरह बुनाई का काम आगे बढ़ता है। बार-बार यही काम दोहराया जाता है।

करघों की किस्म

करघे तरह-तरह के होते हैं। सबसे पुरानी तरह के करघे को खड्डी कहते हैं। इसमें बुनकर गड्ढे के अन्दर बैठकर कपड़ा बुनता है। इन खड्डियों में सुधार करके उनको भी झटके वाली बना दिया गया है। पुरानी खड्डियों में ढरकी मुट्ठी द्वारा नहीं चलाई जाती वरन् ताने में हाथ द्वारा निकाली जाती है। आसाम में बांस का करघा बनाया जाता है। इसकी लागत

कुल पांच रुपये आती है। कुछ दूसरी तरह के भी करघे आसाम में इस्तेमाल किये जाते हैं। उन पर केवल तीन रुपया ही लागत आती है।

चारखाने, सुजनी और दोहरा कपड़ा बनाने के लिये यह जरूरी होता है कि कुछ खास समय के बाद जरूरत के मुताबिक रंगों और कपड़े के किस्म के अनुसार, बाने के धागे यानी ढरकी को करघे से निकल कर बदलते रहें। इससे काम थोड़ा होता है और बुने कपड़े की लागत बढ़ जाती है।

इसके लिये करघे में ढरकी के एक से ज्यादा घर लगाये गये हैं। इन घरों को एक से ज्यादा मुट्ठियों के साथ जोड़ दिया गया है। इन घरों में अलग अलग रंगों के बाने की ढरकियां रखी रहती हैं। जब जिस रंग के बाने की जरूरत ताने में होती है, तब उसी रंग वाली मुट्ठी को चला दिया जाता है। इसमें करघा रोकने की जरूरत नहीं पड़ती। ढरकी मुट्ठी के चलाने से आसानी से अदली बदली जा सकती है, बुनकर का समय बेकार नहीं जाता और कपड़ा उतने ही समय में अधिक बुना जाता है।

करघे की पटियों में और भी सुधार किये गये हैं। बुनते समय कपड़ा अपने आप ही कपड़ा लपेटन पर लिपट जाय इसका भी प्रबन्ध किया गया है।

यही नहीं, इन सव सुधारों को मिला कर एक ऐसा करघा भी वनाया गया है, जिसमें कातने से वुनने तक के सारे काम थोड़ी सी जगह में ही किये जा सकते हैं। इसको कपड़ा वुनने की घरेलू मशीन कहते हैं। इसमें कातने से वुनने तक के सारे काम किये जा सकते हैं। इसी तरह की एक मशीन अमेरिका में भी वनाई गई है जो एक मेज पर रखी जा सकती है।

करघे के वयसरों को कावू में करने के लिये डावी की मदद से कपड़े में वुनते समय थोड़े थोड़े फासले पर भी वुनावट को वदला जा सकता है। तौलियों में वुनते समय आंचल इसकी मदद से डाले जा सकते हैं। एक डावी १२ वयसरों को कावू में कर सकती है। डावी वयधारी चौखटों के सारे वोझ को संभालती है। इसमें लोहे का ढांचा वनाने से भारी से भारी वयों के भार सहार सकती है।

डावी छोटे २ डिजायन वुनत में और जैकार्ड वड़े डिजायन डालने के काम में आता है। जैकार्ड की मदद से थान की वुनत में रूप-रेखायें वनाई जा सकती हैं, ताने के प्रत्येक धागे को कावू किया जा सकता है। इसको जैकार्ड पिजड़ा भी कहते हैं जो जटिल यन्त्र होता है। इसका प्रयोग मशीनी करघे से मामूली करघे तक में कर सकते हैं इससे वुनते समय तस्वीरें भी वनाई जा सकती हैं।

गांधी अध्ययन केन्द्र